॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

परब्रह्म उपनिषद

विषय सूची

॥अथ परब्रह्मोपनिषत् ॥ 3

परब्रह्म उपनिषद 5

शान्तिपाठ 21

॥ श्री हरि ॥

॥अथ परब्रह्मोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

परब्रह्मोपनिषदि वेद्याखण्डसुखाकृति ।
परिव्राजकहृद्ध्येयं परितस्त्वैपदं भजे ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते है कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ परब्रह्मोपनिषत् ॥

परब्रह्म उपनिषद

हरिः ॐ ॥ अथ हैनं महाशालः शौनकोऽङ्गिरसं भगवन्तं पिप्पलादं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ दिव्ये ब्रह्मपुरे के सम्प्रतिष्ठिता भवन्ति । कथं सृज्यन्ते । नित्यात्मन एष महिमा । विभज्य एष महिमा विभुः । क एषः । तस्मै स होवाच । एतत्सत्यं यत्प्रब्रवीमि ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां देवेभ्यः प्राणेभ्यः । परब्रह्मपुरे विरजं निष्कलं शुभमक्षरं विरजं विभाति । स नियच्छति मधुकरः श्वेव विकर्मकः । अकर्मा स्वामीव स्थितः । कर्मतरः कर्षकवत्फलमनुभवति । कर्ममर्मज्ञाता कर्म करोति । कर्ममर्म ज्ञात्वा कर्म कुर्यात् । को जालं विक्षिपेदेको नैनमपकर्षत्यपकर्षति । ॥१॥

एक बार बुद्धिमान् शौनक ने विधिवत् समीप बैठकर अङ्गिरस गोत्रीय भगवान् पिप्पलाद से पूछा-क्या संसार में उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ पहले दिव्य ब्रह्मपुर अर्थात् भगवान् हिरण्यगर्भ के हृदयाकाश में प्रतिष्ठित होते हैं? ये व्यापक महिमाशाली भगवान् अपने अन्दर से उन पदार्थों को यथा विभाग किस तरह सृजित करते हैं? इन विभु की महिमा क्या हैं? अर्थात् ये वस्तुतः कौन हैं? महर्षि पिप्पलाद ने उनसे कहाजो श्रेष्ठ ब्रह्म विद्या मैं तुमसे कहूँगा, वह सत्य है। यह सत् , देवों

(इन्द्रियों) तथा प्राण-अपान आदि दस प्राणों को अपने-अपने विषय ग्रहण करने की शक्ति प्रदान करता है। यह परब्रह्मपुर में विरज (रज आदि गुणत्रय के अभाव वाला) और निष्कल (प्राण आदि नामवाली षोडश कलाओं से रहित) है। इसी कारण शुभ्र (स्वच्छ) और अक्षर (अविनाशी) है, जो गुणातीत होकर सुशोभित होता है, वह जीव समूह के बन्धन और मोक्ष का निर्माण कर्ता होने से 'निर्मक' कहलाता है। इसी प्रकार जो निर्माता है,वह परमात्मा मुमुक्षुओं की अविद्या का । समापन कर देता है, जिससे वे शुद्ध चैतन्य उस परमात्मा का अनुभव (दर्शन) कर पाते हैं। वह परब्रह्म अपने ही स्थान में रहकर अकर्म (कर्महीन) स्वरूप में अवस्थित रहता है, क्योंकि वह कृत-कृत्य होता है, अर्थात् उसके लिए कुछ भी करना शेष नहीं रहता। वह पराग् दृष्टि (विपरीत दृष्टि) वाला व्यक्ति तो इह लोक और परलोक के फल प्राप्त करने की दृष्टि से विविध कर्म करता है और कृषक की भाँति अपने द्वारा किये हुए कर्मों का फल प्राप्त करता है। जो ज्ञानी कर्म के मर्म को (कर्म को जन्म आदि का कारण) जानकर कर्म करता है, वह तो चित्त की शुद्धि के लिए परमेश्वर की आराधना रूप कर्म करता है। जो मुनि अपने अतिरिक्त (अपने को ब्रह्म मानकर) अन्य भ्रम से मुक्ति चाहता है, वह कर्म के मर्म को जानकर (कर्मानुसार ही उच्च-नीच योनियाँ मिलती हैं, यह जानकर) अपने आश्रम के अनुरूप निष्काम कर्म करता है। एक मात्र ब्रह्म में चित्त को लगाने वाला कौन ऐसा विवेकी है, जो विविध प्रकार के कर्म जाल में फँसकर अपना अपकर्ष करता है? अर्थात् कोई नहीं (इसका आशय है कि निष्काम कर्म करने वाले को उसके कर्म सांसारिक विषयों में नहीं खींच सकते)॥१॥

प्राणदेवाश्चत्वारः । ताः सर्वा नाड्यः सुषुप्तश्येनाकाशवत् । यथा श्येनः खमाश्रित्य याति स्वमालयं कुलायम् । एवं सुषुप्तं ब्रूत । अयं च परश्च स सर्वत्र हिरण्मये परे कोशे । अमृता ह्येषा नाडी त्रयं संचरति । तस्य त्रिपादं ब्रह्म । एषात्रेष्य ततोऽनुतिष्ठति । अन्यत्र ब्रूत । अयं च परं च सर्वत्र हिरण्मये कोशे । यथैष देवदत्तो यष्ट्या च ताड्यमानो नैवैति । एवमिष्टापूर्तकर्मशुभाशुभैर्न लिप्यते । यथा कुमारको निष्काम आनन्दमभियाति । तथैष देवः स्वप्न आनन्दमभियाति वेद एव परं ज्योतिः । ज्योतिषामा ज्योतिरानन्दयत्येवमेव । तत्परं यच्चित्तं परमात्मान-मानन्दयति । शुभ्रवर्णमाजायतेश्वरात् । भूयस्तेनैव मार्गेण स्वप्नस्थानं नियच्छति । जलूकाभाववद्यथा-काममाजायतेश्वरात् । तावतात्मानमानन्दयति । परसन्धि यदपरसन्धीति । तत्परं नापरं त्यजति । तदैव कपालष्टकं सन्धाय य एष स्तन इवावलम्बते सेन्द्रयोनिः स वेदयोनिरिति । अत्र जाग्रति । शुभाशुभातिरिक्तः शुभाशुभैरपि कर्मभिर्न लिप्यते । य एष देवोऽन्यदेवास्य सम्प्रसादोऽन्तर्याम्यसङ्गःचिद्रूपः पुरुषः । प्रणवहंसः परं ब्रह्म । न प्राणहंसः । प्रणवो जीवः । आद्या देवता निवेदयति । य एवं वेद । तत्कथं निवेदयते । जीवस्य ब्रह्मत्वमापादयति । ॥२॥

(त्रिपाद् ब्रह्म की प्राप्ति के उपाय बताते हुए ऋषि कहते हैं कि) जीव के प्राणाधार रूप में विश्वादि तुरीयान्त भेद से प्राण के चार भेद होते हैं। उन्हें प्राप्त करने वाली नाड़ियाँ भी चार प्रकार की होती हैं। ये चाररमा,अरमा, इच्छा और पुनर्भवा नामक हैं। इनमें रमा और अरमा नाड़ियों का अवलम्बन लेकर वह (प्राण) आकाशगामी श्येन (बाज़)

की तरह जाग्रत्, स्वप्न आदि के व्यवहार से थकित होकर सुषुप्तावस्था में चला जाता है, अर्थात् जिस प्रकार श्येन आकाश में उड़ते-उड़ते थककर अपने घोंसले में विश्राम हेतु चला जाता है, उसी प्रकार जीव भी जाग्रत् स्वप्नादि प्रपञ्चों से थककर दोनों नाड़ियों का आश्रय लेकर सुषुप्ति में विश्रान्ति प्राप्त करता है। वह (जीव) कभी-कभी सुषुप्तावस्था में अन्यत्र भी भ्रमण करता है, इस संदर्भ में बताते हैं-यह वस्तुतः अमृत रूप देवता सर्वत्र व्यापक हिरण्यमय परकोश अर्थात् हृदयाकाश में रमा आदि नाड़ीत्रय का आश्रय लेकर संचरण करता है। उसके बाद उसका त्रिपाद रूप ब्रह्म ही शेष रह जाता है। यह जीव (प्राणवत्ता) रूप देवता अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर तत्स्वरूप में स्थित रहकर मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जीव इस जाग्रदवस्था के अतिरिक्त भी अन्य अवस्थाओं में अपनी स्वतन्त्र सत्ता समझकर परिभ्रमण करता रहता है। सर्वत्र सदैव हिरण्यमय परकोश में विचरण करता हुआ भी स्वाज्ञानावरणाच्छन्न होकर जाग्रत् आदि अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) के गर्त में गिरता है अर्थात् बन्धनयुक्त होता है। जिस प्रकार कोई देवदत्त नामक व्यक्ति शयन की स्थिति में हो, उसे कोई बेंत से ताड़ित करे, तो जागने के बाद वह पुनः नहीं सोता; उसी प्रकार यह जीव भी श्रुतिरूप (वेद शास्त्रादि) आचार्य द्वारा जाग्रत् हो जाने पर पुनः अवस्थात्रय रूप गर्त में नहीं पड़ता और न ही इष्टापूर्त आदि शुभाशुभ कर्मों में लिप्त होता है। इसी प्रकार जैसे बालक किसी वस्तु में विशेष आसक्ति न होने के कारण जो भी मिल जाए, उसी को पाकर आनन्दित होता रहता है, उसी प्रकार यह जीव भी स्वप्न अथवा जाग्रत्-अवस्था में भी निरन्तर आनन्द का अनुभव करता है अथवा आनन्द की ओर ही दौड़ता है।

अतः जो कोई श्रुतिरूप आचार्य के मुख से यह जान लेता है कि मैं परम ज्योति और आनन्द का स्वरूप हूँ तथा परम ज्योति सूर्यादि की किरण हूँ, प्रकाश हूँ, अपने आप में आनन्दित रहता हूँ। इस प्रकार जिसका हृदय (चित्त) उस परब्रह्म में तत्पर (समर्पित) हो जाता है, वह परमात्मा को प्राप्त करे आत्मा को तृप्त (आनन्दित) करता रहता है अथवा अपने आत्मस्वरूप आनन्दस्वरूप में स्थित रहता है। ईश्वर से शुभ्रवर्ण (निर्विकल्प भाव) उत्पन्न होता है, जिससे चित्त प्रसन्न होता है। इस प्रकार त्रिपुटि विरल निर्विकल्प समाधि का अनुभव करके स्वप्न स्थान में विश्राम करता है अर्थात् त्रिपुटि विशिष्ट अखण्डाकार वृत्ति से शीघ्र ही स्वप्नावस्था को प्राप्त कर 'तत्त्वमसि,' 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुभव करके आत्मा को विश्राम प्रदान करता है। जिस प्रकार जलूका (जोंक) एक तिनके से दूसरे तिनके पर जाती है, उसी प्रकार यह विद्वान् भी तुरन्त जागरणस्थ और तुरन्त स्वप्नस्थ हो जाता है। पुनः जागरण को त्याग कर फिर स्वप्नस्थ हो जाता है। ईश्वर की कृपा से (अवस्था विभाग से) तीनों अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) में सञ्चरण करने की इच्छा करने मात्र से वैसी स्थिति बन जाती है। इस कारण यह (जीव) सविकल्प और निर्विकल्प समाधि से अपनी आत्मा को आनन्दित करता है। तत्पश्चात् जीवात्मा और परमात्मा के एकत्व में जो भेद सापेक्षत्व (अविद्या) है, उसका यह आत्मतत्त्व त्याग कर देता है। इस प्रकार वह अविद्यारहित आत्मतत्त्व (परब्रह्म) अपर (उस ब्रह्म से भिन्न कुछ न होने से) का त्याग नहीं करता। स्वयमेव विद्यमान रहता है। यदि केवल श्रवणादि के माध्यम से निर्विशेष ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, तो कपालाष्टक का आश्रय लेना चहिए। कपालाष्टक के आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

ध्यान और समाधि। इनके द्वारा अन्तर के कलुष को शुद्ध करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस कपालाष्टक-अष्टांगयोग के द्वारा स्तन (हृदय स्थान में स्थित केले के पुष्प) की भाँति लटका रहता है, जो योग के समय ऊपर उठता हुआ विकास को प्राप्त होता है; इसमें ही इन्द्रयोनि (परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग), जिसे वेदयोनि कहते हैं, वह ईश्वर जाग्रत् रहता है। इस प्रकार जो अपने हृदयकमल में ईश्वर का ध्यान करता है, वह शुभ-अशुभ से परे होकर शुभाशुभ कर्मों के द्वारा कभी लिप्त नहीं होता। वह देव कैसा है? इस संदर्भ में बताते हैं-वह अन्य देवों का संप्रसाद (अत्यन्त प्रसन्नता) दाता, अन्तर्यामी, असङ्ग, चैतन्य स्वरूप, पुरुष, प्रणव हंस (ॐकार), परमब्रह्म है, जो प्राण हंस नहीं है। (यहाँ प्राण हंस से अभिप्राय मुख्य प्राण से है, क्योंकि यह परब्रह्म प्रकरण है, प्राण को नहीं) प्रणव ही जीव है; क्योंकि वह ओंकार के अवयव के आकार से समझा जाने वाला है। वह जीवरूपी आद्य देवता कहा जाता है। जो इस यथार्थता को इस प्रकार जानता है, वह जीव-ब्रह्म के भेद को कैसे निरूपित (निवेदित) कर सकता है। वह तो जीव और ब्रह्म का एकत्व ही प्रतिपादित करता है, उनका भेद कभी स्मरण नहीं करता॥२॥

सत्त्वमथास्य पुरुषस्यान्तः शिखोपवीतत्वं ब्राह्मणस्य । मुमुक्षोरन्तः शिखोपवीतधारणम् । बहिर्लक्ष्यमाणशिखायज्ञोपवीतधारणं कर्मिणो गृहस्थस्य । अन्तरुपवीतलक्षणं तु
बहिस्तन्तुवदव्यक्तमन्तस्तत्त्वमेलनम् । ॥३॥

ब्रह्म रूप इस पुरुष का सत्त्व आन्तरिक शिखा और यज्ञोपवीत है। मुमुक्षु ब्राह्मण को यह आन्तरिक शिखा और यज्ञोपवीत ही धारण करना चाहिए। बाहर दिखाई देने वाले शिखा और यज्ञोपवीत को धारण करना गृहस्थ का कर्तव्य है। आन्तरिक शिखा और यज्ञोपवीत बाह्य सूत्रवत् शिखा और यज्ञोपवीत के समान व्यक्त नहीं है। वे तो अव्यक्त हैं और ब्रह्मत्व से मेल कराने वाले हैं ॥३॥

न सन्नासन्न सदसद्भिन्नाभिन्नं न चोभयम् । न सभागं
न निर्भागं न चाप्युभयरूपकम् ॥ ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं हेयं
मिथ्यत्वकारणादिति । ॥४॥

अविद्या का स्वरूप न सत् है, न असत्, न भिन्न है, न अभिन्न और न दोनों का उभय स्वरूप है। वह न सभाग है, न निर्भाग और न इनका उभय रूप ही है। अतः जब तक़ अनिर्वचनीय ब्रह्म का आत्मैकत्व (प्रत्येक आत्मा ब्रह्म है, यह ज्ञान) उदित नहीं होता, तभी तक अविद्या की स्थिति है। ब्रह्म स्वरूप का वास्तविक ज्ञान हो जाने पर, यह सभी हेय है, त्याग देने योग्य है, क्योंकि यह सब मिथ्या है ॥४॥

पञ्चपाद्ब्रह्मणो न किंचन । चतुष्पादन्तर्वर्तिनोऽन्त-
र्जीवब्रह्मणश्चत्वारि स्थानानि । नाभिहृदयकण्ठमूर्धसु
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयावस्थाः । आहवनीयगार्हपत्य-
दक्षिणसभ्याग्निषु । जागरिते ब्रह्मा स्वप्ने विष्णुः
सुषुप्तौ रुद्रस्तुरीयमक्षरं चिन्मयम् । तस्माच्चतुरवस्था ।
चतुरङ्गुलवेष्टनमिव षण्णवतितत्त्वानि तन्तुवद्विभज्य तदा

हितं त्रिगुणीकृत्य द्वात्रिंशत्तत्त्वनिष्कर्षमापाद्य
ज्ञानपूतं त्रिगुणस्वरूपं त्रिमूर्तित्वं पृथग्विज्ञाय
नवब्रह्माख्यनवगुणोपेतं ज्ञात्वा नवमानमितस्त्रिगुणीकृत्य
सूर्येन्द्वग्निकलास्वरूपत्वेनैकीकृत्याद्यन्तरेकत्वमपि मध्ये
त्रिरावृत्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरत्वमनुसंधायाद्यन्तमेकीकृत्य
चिद्ग्रन्थावद्वैतग्रन्थिं कृत्वा नाभ्यादिब्रह्मबिलप्रमाणं
पृथक् पृथक् सप्तविंशतितत्त्वसंबन्धं त्रिगुणोपेतं
त्रिमूर्तिलक्षणलक्षितमप्येकत्वमापाद्य वामांसादिदक्षिणकण्ठ्यन्तं
विभाव्याद्यन्तग्रहसंमेलनमेकं ज्ञात्वा मूलमेकं सत्यं
मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।
हंसेति वर्णद्वयेनान्तः शिखोपवीतित्वं निश्चित्य ब्राह्मणत्वं
ब्रह्मध्यानार्हत्वं यतित्वमलक्षितान्तःशिखोपवीतित्वमेवं
बहिर्लक्षितकर्मशिखा ज्ञानोपवीतं गृहस्थस्याभासब्रह्मणत्वस्य
केशसमूहशिखाप्रत्यक्षकार्पासतन्तुकृतोपवीतत्वं चतुर्गुणीकृत्य
चतुर्विंशतितत्त्वापादनतन्तुकृत्त्वं नवतत्त्वमेकमेव ॥ परंब्रह्म
तत्प्रतिसरयोग्यत्वाद्बहुमार्गप्रवृत्तिं कल्पयन्ति । सर्वेषां ब्रह्मादीनां
देवर्षीणां मनुष्याणां मूर्तिरेका । ब्रह्मैकमेव । ब्राह्मणत्वमेकमेव ।
वर्णाश्रमाचारविशेषाः पृथक्पृथक् शिखावर्णाश्रमिणामेककैव ।
अपवर्गस्य यतेः शिखायज्ञोपवीतमूलं प्रणवमेकमेव वदन्ति । हंसः
शिखा । प्रणव उपवीतम् । नादः संधानम् । एष धर्मो नेतरो धर्मः ।
तत्कथमिति । प्रणवहंसो नादस्त्रिवृत्सूत्रं स्वहृदि चैतन्ये तिष्ठति
त्रिविधं ब्रह्म । तद्विद्धि प्रापञ्चिकशिखोपवीतं त्यजेत् । ॥५॥

पंचपाद (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत) ब्रह्म अपने से पृथक् अविद्यारूप है या नहीं, यह भ्रान्ति कुछ नहीं है अर्थात् वह सर्वमय है। व्यष्टि और समष्टि रूप चतुष्पाद के अन्तर्गत विद्यमान जीवरूप ब्रह्म के चार स्थान हैं-नाभि, हृदय, कण्ठ और मूर्धा (सिर)।

ब्रह्म चार अवस्थाओं में प्राप्त होता है-जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य (तुरीय) । आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिण और सभ्य अग्नियों में यथाशक्य आत्मभाव करना चाहिए। जाग्रत्-अवस्था में ब्रह्मा, स्वप्नावस्था में विष्णु, सुषुप्तावस्था में रुद्र तथा तुरीयावस्था में अक्षर चिद्रूप ब्रह्म ध्यातव्य है। अब ब्रह्म को यज्ञोपवीत स्वरूप विवेचित किया जाता है, क्योंकि संन्यासी इसी ब्रह्मरूप यज्ञोपवीत को धारण करता है-चार अवस्थाएँ (जो ऊपर कही गई हैं) ही चार अँगुलियों का वेष्टन है (चार अँगुलियों में लपेट कर ही यज्ञोपवीत का निर्माण किया जाता है) जो छः बार किया जाता है। इसमें ९६ तत्त्व लपेटे जाते हैं। इसके तीन विभाग करके ३ गुने (३२४३८९६) रूप द्वारा बत्तीस तत्त्वों के निष्कर्ष का सम्पादन करके ज्ञानपूत, त्रिगुण (सत्, रज, तम) रूप (तीन गुण अर्थात् यज्ञोपवीत की तीन लड़े) और त्रिमूर्ति रूप को पृथक् जानकर, नौ ब्रह्म अर्थात् नौ गुणों (नौ धागों) को जानकर नौ के मान से (परिमाण से) तीन को पुनः तीन गुना करके सूर्य, इन्दु(चन्द्रमा) और अग्नि की कला के स्वरूप से एकीकृत करके फिर आदि, मध्य और अन्त की तीन वत्तियाँ करके, ब्रह्मा, विष्ण, और महेश (रुद्र) का अनुसन्धान करके, उन आवत्तियों को आदि से अन्त तक एक करके चिद्ग्रन्थि में अद्वैत ग्रन्थि बनाकर नाभि से लेकर ब्रह्म बिल (ब्रह्मरन्ध्र) तक के परिमाण में पृथक्-पृथक् सत्ताईस (२७) तत्त्वों से सम्बन्धित त्रिगुणयुक्त (तीन लड़ों से युक्त), त्रिमूर्तिरूप (तीन अलगअलग रूपों में) दीखने पर भी उसमें एकत्व सम्पादन करके बाँयें कन्धे से लेकर दाहिने भाग की कमर तक इसकी भावना करके (इसे धारण करके) ही चित्त शुद्ध हो सकता है। इस यज्ञोपवीत के विषय में ऐसा जानना चाहिए कि इसमें प्रारम्भ से अन्त तक विभिन्न

तत्त्वों के सम्मेलन में मूल तत्त्व एक ही है- जैसे- मिट्टी से बने हुए कुम्भ आदि विभिन्न पात्र होते हैं, पर उनमें सत्य केवल मिट्टी ही है। इसी प्रकार ब्रह्म निर्मित सभी कुछ ब्रह्म ही है, उससे पृथक् अन्य कोई सत्ता नहीं है। अस्तु सोऽहं (हंस) वही ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा भाव सतत करना ही अन्तर्वर्ती शिखा और यज्ञोपवीतत्व है, ऐसा निश्चय करके ब्राह्मणत्व (ब्रह्म ध्यान की अर्हतायोग्यता) और यतित्व की प्राप्ति होती है। इनके (ब्राह्मणत्व और यतित्व प्राप्त व्यक्तियों की) शिखा और यज्ञोपवीत अलक्षित अर्थात् अन्तर्वर्ती होते हैं। बाहर दीखने वाले कर्म रूप शिखा और ज्ञानरूप उपवीत गृहस्थों के होते हैं। बाहर से दीखने वाले केश समूह शिखा और प्रत्यक्ष कपास के धागों से निर्मित उपवीत तो ब्राह्मणत्व अथवा वैदिक धर्मानुष्ठान योग्यता के आभासक हैं। यज्ञोपवीत के सूत्र चौबीस (२४) तत्त्वों का चौगुना (अर्थात् २४x४=९६) अर्थात् छियानवे तत्त्व रूपी ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं, यज्ञोपवीत के नौ तत्त्व (धागे) भी ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं, यज्ञोपवीत के नौ तत्त्व (धागे) भी ब्रह्म के ही प्रतिपादक हैं। ब्रह्म एक ही है, किन्तु बहुत से लोग अपनी-अपनी बुद्धि से उसकी प्राप्ति के विविध उपायों (सांख्ययोगादि)। की कल्पना करते हैं। सभी ब्राह्मणों, देवर्षियों और मनुष्यों के लिए मुक्ति, ब्रह्म और ब्राह्मणत्व एक समान हैं। वर्णाश्रम और आचार पृथक्-पृथक् हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था वालों के लिए शिखा का स्वरूप एक ही है। मोक्ष के अधिकारी यति की शिखा और यज्ञोपवीत का मूल प्रणव (ॐकार) ही है, ऐसा कहते हैं। इनके (यतियों के) लिए हंस (ब्रह्मज्ञान) ही शिखा और तुरीय ॐकार (प्रणव) ही उपवीत है तथा नाद ही इन दोनों को जोड़ने वाला अर्थात् सन्धान है। यही इनका धर्म है, अन्य कोई नहीं। इनका यह धर्म किस प्रकार

है ? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं- प्रणव (ॐकार) ही हंस (ब्रह्म) और नाद ही यह त्रिवृत् (तीन लड़ी) वाला सूत्र है। यह अपनी ही महिमा से अपने में स्थित है। वह चैतन्य रूप से हृदय में विराजता है। पर और अपर के भेद से इस ब्रह्म को दो प्रकार से समझना चाहिए। यदि कोई अपने से पृथक् अन्य कुछ नहीं देखता, सब आत्मरूप में ही देखता है, ऐसे मुमुक्षु को प्रपञ्चयुक्त शिखा और यज्ञोपवीत का परित्याग कर देना चाहिए॥५॥

सशिखं वपनं कृत्वा बहिःसूत्रं त्यजेद्बुधः ।
यदक्षरं परंब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् ॥ ६ ॥

बुद्धिमानों (अर्थात् उपर्युक्त स्थिति वालों) को शिखा सहित केश कर्तन करके बाह्य उपवीत (यज्ञोपवीत) का विसर्जन कर देना चाहिए और अक्षर ब्रह्म को ही सूत्र स्वरूप धारण करना चाहिए ॥६॥

पुनर्जन्मनिवृत्यर्थं मोक्षस्याहर्निशं स्मरेत् ।
सूचनात्सूत्रमित्युक्तं सूत्रं नाम परं पदम् ॥ ७॥

पुनर्जन्म से निवृत्ति के लिए सतत मोक्ष का स्मरण करे। सूचना देने वाला होने से ही ब्रह्मरूपी सूत्र को परमपद रूप 'सूत्र' कहा जाता है॥७॥

तत्सूत्रं विदितं येन स मुमुक्षुः स भिक्षुकः ।
स वेदवित्सदाचारः स विप्रः पङ्क्तिपावनः ॥ ८॥

उस सूत्र (ब्रह्मसूत्र) का जिसे ज्ञान हो गया, वही मुमुक्षु, भिक्षुक, वेदज्ञ, सदाचारी और विप्र है, जो अनेक प्राणियों को पावन करता है॥८॥

येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।
तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगविद्ब्राह्मणो यतिः ॥ ९॥

जिस परब्रह्म ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मणि-मनकों की तरह एक ही सूत्र में पिरोया है, उस सूत्र को धारण करने वाला योगी, योगविद् ब्राह्मण और यति होता है॥९॥

बहिःसूत्रं त्यजेद्विप्रो योगविज्ञानतत्परः ।
ब्रह्मभावमिदं सूत्रं धारयेद्यः स मुक्तिभाक् ॥ १०॥

ब्राह्मण, योगविद् और ज्ञानतत्पर व्यक्ति को चाहिए कि वह बाहरी सूत्र का परित्याग कर दे; क्योंकि जो ब्रह्मभाव युक्त सूत्र को धारण करता है, वह मुक्ति का अधिकारी होता है। उस (ब्रह्मभावमय) सूत्र को धारण करने में किसी प्रकार की अपवित्रता, उच्छिष्टता (जूठा होना) नहीं रहती॥१०॥

नाशुचित्वं न चोच्छिष्टं तस्य सूत्रस्य धारणात् ।
सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम् ॥ ११॥

संसार में जिन यज्ञोपवीतधारियों के यज्ञोपवीत (सूत्र) के अन्तर्गत ज्ञान समाहित है, वे ही इस जगत् में सूत्रविद् और सच्चे यज्ञोपवीतधारी हैं॥११॥

ये तु सूत्रविदो लोके ते च यज्ञोपवीतिनः ।
ज्ञानशिखिनो ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः ।
ज्ञानमेव परं तेषां पवित्रं ज्ञानमीरितम् ॥ १२॥

जो ज्ञानरूपी शिखा, ज्ञान की निष्ठा और ज्ञानरूपी यज्ञोपवीत धारण करने वाले हैं, उनके लिए ज्ञान ही सर्वस्व है; क्योंकि ज्ञान को परम पवित्र कहा गया है॥१२॥

अग्नेरिव शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा ।
स शिखीत्युच्यते विद्वान्नेतरे केशधारिणः ॥ १३॥

जिनकी अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानरूपी शिखा है, अन्य कोई जिनकी शिखा नहीं है, वस्तुतः वे ही शिखी (चोटी वाले) हैं, शेष तो मात्र केशधारी हैं, ऐसा विद्वान् कहते हैं॥१३॥

कर्मण्यधिकृतः ये तु वैदिके लौकिकेऽपि वा ।
ब्राह्मणाभासमात्रेण जीवन्ते कुक्षिपूरकाः ।
व्रजन्ते निरयं ते तु पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ १४॥

जो वैदिक (यज्ञादि) कर्मों अथवा लौकिक (आहार-विहार आदि) कर्मों में निरत हैं, वे तो आभास मात्र ब्राह्मण हैं; क्योंकि वे केवल

उदर-पूर्ति के लिए जीते हैं, ऐसे लोग प्रत्येक जन्म के अन्त में नरक में जाते हैं (अथवा संसार के इस जन्म-मृत्यु रूपी नरक में विविध कष्ट सहते हैं)॥१४॥

वामांसदक्षकण्ठ्यन्तं ब्रह्मसूत्रं तु सव्यतः ।
अन्तर्बहिरिवात्यर्थं तत्त्वतन्तुसमन्वितम् ॥ १५॥

सुधी (विद्वान्) के लिए उचित है कि वह बाँयें कन्धे से दाहिनी कमर पर्यन्त ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) धारण करे। यह तो बाह्य यज्ञोपवीत की बात हुई, इसी प्रकार अन्तर में परमतत्त्व रूप तन्तु (धागे) से निर्मित ब्रह्मसूत्र नाभि से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त यथा प्रमाण (परिमाण) धारण करे॥१५॥

नाभ्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तप्रमाणं धारयेत्सुधीः ।
तेभिर्धार्यमिदं सूत्रं क्रियाङ्गं तन्तुनिर्मितम् ॥ १६॥

इस प्रकार परमतत्त्व रूपी तन्तु से निर्मित विविध क्रियाओं के अङ्ग रूप इस ब्रह्मसूत्र को धारण करना चाहिए। ॥ १६॥

शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम् ।
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य नेतरेषां तु किंचन ॥ १७॥

जिसकी शिखा और यज्ञोपवीत ज्ञानमय होते हैं, उसके लिए सब कुछ ब्रह्ममय है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है॥१७॥

इदं यज्ञोपवीतं तु परमं यत्परायणम् ।
विद्वान्यज्ञोपवीती संधारयेद्यः स मुक्तिभाक् ॥ १८॥

जो विद्वान् इस परम तत्त्व रूपी और ब्रह्मपरायण यज्ञोपवीत को धारण करता है, वही सच्चा यज्ञोपवीती और मुक्ति का अधिकारी है॥१८॥

बहिरन्तश्चोपवीती विप्रः संन्यस्तुमर्हति ।
एकयज्ञोपवीती तु नैव संन्यस्तुमर्हति ॥ १९॥

जो बाहर और अन्दर दोनों प्रकार से यज्ञोपवीत धारण करता है, वही विप्र वस्तुतः संन्यास का अधिकारी है अर्थात् बाह्य यज्ञोपवीत धारण कर लौकिक-वैदिक कर्मों को विधिवत् सम्पन्न करते हुए आन्तरिक यज्ञोपवीत द्वारा जिसके अन्दर ब्रह्मतत्त्व जिज्ञासा से वैराग्य वृत्ति उत्पन्न हो गई हो, वही संन्यास का अधिकारी है। केवल एक (बाह्य) यज्ञोपवीत धारण करने वाला विप्र संन्यास का अधिकारी नहीं है॥१९॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मोक्षापेक्षी भवेद्यतिः ।
बहिःसूत्रं परित्यज्य स्वान्तःसूत्रं तु धारयेत् ॥ २०॥

इसलिए यति को चाहिए कि वह सभी प्रयत्नों से मोक्षापेक्षी (मुमुक्षु) बने तथा बाह्यसूत्र का परित्याग करके अपने अन्दर सूत्र को धारण करे॥२०॥

बहिःप्रपञ्चशिखोपवीतित्वमनादृत्य प्रणवहंसशिखोपवीतित्वमवलम्ब्य मोक्षसाधनं कुर्यादित्याह भगवाञ्छौनक इत्युपनिषत् ॥॥२१॥

(अन्त में) भगवान् शौनक ने कहा कि बाहरी प्रपञ्चमय शिखा और यज्ञोपवीत का परित्याग करके प्रणव हंस (ॐकार ब्रह्म) रूपी शिखा तथा यज्ञोपवीत का अवलम्बन लेकर मोक्ष के लिए प्रयत्न करे। ऐसी यह रहस्यमयी विद्या है॥२१॥

॥ श्री हरि ॥

शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते है कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि

करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति परब्रह्मोपनिषत्समाप्ता॥

॥ परब्रह्म उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥